`**सभी परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्य चमत्कार मात्र**'... (भावार्थ की अंतिम चार पंक्ति) सभी शास्त्र पढ़ें, सुने भी (परन्तु) करना क्या ? उसका निचोड़ क्या ? परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्य चमत्कार स्वरूप वह भी अपना आत्मा, उसे (अपना) मानना यह (करना) `कथा का ज्ञान स्वयं को तो स्वयं से कभी हुआ नहीं', यह जो करना था,

वह तो ज्ञान कभी हुआ नहीं, `और जिसको वह ज्ञान हुआ था उसकी सेवा तो कभी की नही' अर्थात इनकी आज्ञा जो है वीतरागभाव की, स्वाश्रय लेने की - यह तो किया नहीं। इसलिये सेवा नहीं की - ऐसा कहा जाता है। आहाहा ! कारण कि अनंत ज्ञानियों का कहने का सार तो यह है। चैतन्य स्वरूप चमत्कारी पदार्थ प्रभु ! उसका अनुभव करना, उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना - यह उनका कहने का सार और आज्ञा है। वह आज्ञा प्रमाण किया नहीं एवं सेवा की नहीं, इसप्रकार सेवा दूसरी क्या सेवा थी। आहाहा !

`इसलिये उसकी कथा न कभी सुनी... आहाहा ! न उसका परिचय किया, एवं न ही अनुभव हुआ, इसलिये उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं'। मूल में तो यह है। फिर अर्थ किया कि सुलभ नहीं अर्थात दुलर्भ है इसप्रकार, शेष सभी सुलभ है, आहाहा ! परंतु यह एक सुलभ नहीं, दुर्लभ है। बाहर के सभी (विषय) सुलभ हैं, अनंतबार मिला, यह वाणी अनंतबार मिली, पैसा भी अनंतबार मिला, देवदर्शन अनंतबार हुआ, समवशरण में अनंतबार गया, यह कोई दुर्लभ नहीं। आहाहा ! सुलभ नहीं तो एक यह, चैतन्य चमत्कारी वस्तु जो अंदर है, भले उसका कद शरीर प्रमाण हो, और बाहर में भले पुण्य और पाप की विकल्पवाली दशा दिखे, परंतु वस्तु तो उससे भिन्न है। आहाहा ! यह पुण्य और पाप के विकल्प, राग, उससे भी भिन्न, यह सभी शास्त्रों में (कहा) एवं ज्ञानियों को कहना तो यह है उसका अनुभव करो। उससे तुम्हारा जन्म-मरण का अंत आयेगा। आहाहा !

अब आचार्य कहते हैं... है न ऊपर `अतएव एवैतदुपदर्श्यते' इसलिये ही जीवों को वह भिन्न आत्मा का एकत्व हम दिखलाते है भगवान आत्मा राग से भिन्न और स्वरूप से अभिन्न ऐसी चीज दर्शाते हैं, कारण कि सुनकर करना तो यह है। अतः यह हम दिखायेंगे। (अब) पांचवी गाथा।

गाथा - ५

अत एवैतदुपदर्श्यते -

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।५।।

तमेकत्वविभक्तं दर्शयेऽहमात्मनः स्वविभवेन।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलेयं छलं न गृहीतव्यम्।।५।।

अब आचार्य कहते हैं कि इसीलिये जीवों को उस भिन्न आत्मा का एकत्व बतलाते हैं :-

दर्शाउँ एक विभक्तको, आत्मातने निज विभवसे।
दर्शाउँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने।।५।।

गाथार्थ :- [तं] उस [एकत्वविभक्तं] एकत्वविभक्त आत्मा को [अहं] मैं [आत्मनः] आत्मा के [स्वविभवेन] निज वैभव से [दर्शये] दिखाता हूँ; [यदि] यदि मैं [दर्शयेयं] दिखाऊँ तो [प्रमाण] प्रमाण (स्वीकार) करना, [स्खलेयं] और यदि कहीं चूक जाऊँ तो [छलं] छल [न] नहीं [गृहीतव्यं] ग्रहण करना।

टीका :- आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस सबसे मैं इस एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा- ऐसा मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया है। मेरे आत्मा का वह निज वैभव इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक है, और `स्यात्' पद की मुद्रावाला जो शब्दब्रह्म-अर्हन्त का परमागम है, उसकी उपासना से उसका जन्म हुआ है। (`स्यात्' का अर्थ `कथंचित्' है अर्थात किसी प्रकार से किसी अपेक्षा से कहना। परमागम को शब्दब्रह्म कहने का कारण यह है कि-अर्हंत के परमागम में सामान्य धर्मों के-वचनगोचर समस्त धर्मों के नाम आते हैं और वचन से अगोचर जो विशेषधर्म हैं उनका अनुमान कराया जाता है; इसप्रकार वह सर्व वस्तुओं का प्रकाशक है, इसलिये उसे सर्वव्यापी कहा जाता है, और इसीलिये उसे शब्दब्रह्म कहते हैं।) समस्त विपक्ष-अन्यवादियों के द्वारा गृहीत

सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति के अवलम्बन से उस निज वैभव का जन्म हुआ है और निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न (अन्तर्लीन) परमगुरु-सर्वज्ञदेव और अपरगुरु-गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यंत,- उनके प्रसादरूप से दिया गया जो शुद्धात्मा तत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश तथा पूर्वाचार्यों के अनुसार जो उपदेश है उससे निज वैभव का जन्म हुआ है। निरंतर झरता हुआ-स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनंद है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से निज वैभव का जन्म हुआ है। यों जिस जिस प्रकार से मेरे ज्ञान का वैभव है उस समस्त वैभव से दिखाता हूँ। मैं जो यह दिखाऊँ तो उसे स्वयमेव अपने अनुभव-प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना; और यदि कहीं अक्षर, मात्रा, अलंकार, युक्ति आदि प्रकरणों में चूक जाऊँ तो छल (दोष) ग्रहण करने में सावधान मत होना। शास्त्र समुद्र के बहुत से प्रकरण हैं, इसलिए स्वसंवेदनरूप अर्थ प्रधान है; इसलिये अर्थ की परीक्षा करनी चाहिये।

भावार्थ :- आचार्य आगम का सेवन, युक्ति का अवलंबन, पर और अपर गुरु का उपदेश और स्वसंवेदन-यों चार प्रकार से उत्पन्न हुए अपने ज्ञान के वैभव से एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं। हे श्रोताओ ! उसे अपने स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से प्रमाण करो; यदि कहीं किसी प्रकरण में भूल जाऊँ तो उतने दोष को ग्रहण मत करना। कहने का आशय यह है कि यहाँ अपना अनुभव प्रधान है; उससे शुद्ध स्वरूप का निश्चय करो।।

गाथा - ५ पर प्रवचन

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।५।।

दशाउँ एक विभक्तको, आत्मातने निज विभवसे।
दर्शाउँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने।।५।।

गाथार्थ :- `**तं**' शब्द है न पहला तं, उस एकत्व विभक्त आत्मा को, राग से भिन्न और स्वभाव से अभिन्न- ऐसा जो उसका स्वरूप है उसे मैं, `अहम्' आहाहा ! भगवान ने कहा है इसलिये मैं उसे दिखाता हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा ! मैं स्वयं कहूँगा। आहाहा ! मैं आत्मा के निज वैभव से दिखाऊंगा। आहाहाहा ! हमारा निज वैभव... जगत का वैभव... यह धूल तथा बाहर की सामग्री सभी वैभव... हमारा निज वैभव अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव, अतीन्द्रियज्ञान के परिणमन का ज्ञान, अतीन्द्रिय

वीर्य की प्रगट दशा, अनंत अनंत दर्शन की अंशरूप प्रगटदशा - ऐसा जो मेरा निज वैभव... उसमें - ऐसा नहीं कहा कि पुण्य हमारा निज वैभव है, शुभ भाव हमारा निज वैभव है।

कहने में विकल्प होता है, वह विकल्प हमारा वैभव नहीं। आहाहा ! आत्मा की अपनी संपत्ति द्वारा `स्वविभवेन' दिखाता हूँ। आहाहाहा ! क्या आचार्यों की शैली, दिखाता हूँ... परंतु मैं तो छद्मस्थ हूँ इसलिये दिखाता हूँ और उसमें जो दिखाया... आहाहाहा ! दिखाता हूँ, जो मैं दिखाता हूँ आहाहा ! दिखलाने की वाणी आ गई और दिखाऊं उसमें तो। आहाहाहा ! (तुम) प्रमाण करना हो, आहाहाहा ! स्वीकार करना हो, अकेला हाँ करके नहीं, मात्र बात को धारणा में लेकर नहीं। आहाहाहाहा ! परंतु अनुभव से प्रमाण करना। आहाहाहा !

दिखलाता हूँ, दिखलाऊं तो... आहाहाहा ! दिखाने का भाव आया है, परंतु दिखाना प्रारंभ कैसे हो, आहाहा ! मैं जो दिखाऊं, तब - ऐसा निमित्त है तब तुम्हारा उपादान भी स्वीकार करे - ऐसा होना चाहिए। आहाहा ! ऐसी बात कहाँ है यह तो देखो ! वीतरागी संत। वीतरागी अरहंत एवं (वीतरागी) गुरु तथा वीतरागी शास्त्रों को जिसने स्वीकारा है माना है... आहाहा ! इसके अतिरिक्त जिन्होंने आत्मा का वीतरागभाव से अनुभव किया है... आगे कहेंगे, स्वीकार करना। जिसप्रकार हम कहेंगें उसप्रकार वस्तु है कि नहीं - इसप्रकार तुम स्वयं के अनुभव से, इसे स्वीकार करना हो। आहाहाहा ! जिसप्रकार हम कहना चाहते हैं कि ***राग से प्रभु भिन्न है तथा अपनी पूर्णसंपदा से अभिन्न है, इसप्रकार दिखलाऊं तो हमारा दिखलाना निष्फल नहीं जाये। आहाहाहा ! तब स्वीकार करना... ऐसे जीव के लिये कहते हैं इस प्रकार बतलाते हैं। आहाहा ! प्रभु इस प्रकार वहाँ दृष्टि करना मैं जो बतलाता हूँ कि राग से भिन्न और स्वरूप संपदा से एकत्व दिखलाऊँ तब उसको स्वीकार करना, किसप्रकार ? जिस तरह है वैसा कहता हूँ वह तुम्हें भासित होता है कि नहीं ? तुम्हें भाव भासन होता है कि नहीं, भासित हो तब स्वीकार करना।*** आहाहा ! समयसार। आहाहा ! भरतक्षेत्र के प्रवचनों का सर्वोत्कृष्ट बादशाह है। आहाहा ! - ऐसा कहना चाहते हैं कि तुम भाग्यशाली हो कि ऐसी वाणी तुम्हें सुनने मिली। इसलिये अब तुम अपना पुरुषार्थ करके जिसप्रकार मैं कहना चाहता हूँ वह समझकर स्वीकार करना, आहाहाहा ! उसका भावभासन करके प्रमाण करना। ऐसी बातें है। आहाहाहा !

इसप्रकार प्रभु आत्मा राग से (एवं) विकल्प से भिन्न है... वीतरागी संत एवं वीतरागी देव, वीतराग भाव प्रगट करने की बात करते हैं। (स्वीकारोगे) तभी यह वीतरागी पर्याय प्रगट होगी। आहाहा ! ***मैं कहता हूँ उस प्रकार वस्तु है कि नहीं, इसतरह***

अपने अनुभव से प्रमाण करना। आहाहाहा ! अकेला स्वीकार करके क्षयोपशम मात्र का विषय नहीं बनाना। आहाहाहा ! देखो तो सही मात्र पुरुषार्थ प्रेरक (बात है)।

अंदर में भगवान... आनंद का नाथ परमात्मा, तुम्हारे पास में स्थित है न प्रभु ! आहाहा ! उसीकी तो हम बात करते हैं, है उसीकी मैं बात करता हूँ। आहाहा ! और जो है उसे तुम्हें सुनाना है और तुम सुनने आये हो। आहाहा ! जो है उसे तुम प्राप्त करना। आहाहाहा ! उसका अस्तित्व जितना और जैसा है, उसीप्रकार अनुभव द्वारा उसके अस्तित्व को स्वीकार करना अनुभव से आहाहा ! गजब बात है !! यह शास्त्र सार कहलाता (है)। आहाहा ! लोग तो कहते कि हमें तुम मानना, हमारे देव-गुरु-शास्त्र को मानना तो तुमको सम्यग्दर्शन होगा। ***आहाहा ! यहाँ तो कहा जाता है कि हम तुम्हें जो कहते हैं उसे तुम अपने अनुभव से स्वीकार करके मानना, हमने कहा इसलिए मानना - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! ज्ञान स्वरूपी प्रभु, चैतन्य चमत्कारी, चिंतामणि रतन `प्रभु तुम हो न', चैतन्य चमत्कारी चिंतामणि, आहाहा ! महारतन प्रभु मैं तुम्हें दिखाता हूँ न ? आहाहा ! तब तुम देख लेना, कि (जैसा बतलाया) वैसा है कि नहीं ? आहाहा !

देखो ! यह सैद्धांतिक कथन और यह वाणी ! लोग कहते हैं कि अरहंत महादेव हैं (और) मुझे गुरु मानों तो यही सम्यग्दर्शन है। यह वीतरागी वाणी नहीं। आहाहा ! यह वीतरागी संतों की वाणी नहीं। आहाहाहा ! अभ्यास न होने से (मार्ग) कठिन लगता (है) वस्तु तो है। है उसे प्राप्त करना है न ? न हो और उसे प्राप्त करना हो तब तो कठिन है ? मौजूद वस्तु अंदर विद्यमान है न। आहाहा ! कल्पवृक्ष, चिंतामणि, कामधेनु - ऐसा यह भगवान स्वयं ही है। आहा ! उसके अंदर तुम जाकर अनुभव करके उसका अनुसरण करके `स्वीकार' करना। आहाहाहाहा !

वह (संबोधन) मात्र शब्दों का नहीं आया। कलशटीकाकार ने उसका अर्थ बहुत अच्छा `अनुभवशील' किया है न ! सर्वज्ञ का अनुसरण करके निकली वाणी... निकली तो अपने उपादान से, परंतु उसके निमित्तरूप में सर्वज्ञ हैं। आहाहा ! इसकारण इस वाणी को अनुभवशीली कहा जाता है। क्योंकि ? सर्वज्ञदशा प्रगटी उसके अनुसार वाणी निकलेगी। आहाहा ! वाणी तो उपादान से आयेगी, पर उस वाणी की उपादान रूप योग्यता ही ऐसी है, जैसी सर्वज्ञदशा है उसके अनुसार वाणीकी पर्याय भी परिणमित होगी। आहाहाहाहा ! यहाँ कहते हैं कि मैं वाणी द्वारा दिखाऊंगा। आहाहा ! वस्तुतः दिखानेवाली भाषा हमारे स्वभाव के वैभव को अनुसरण करती हुयी परिणमती है। आहाहाहा ! यहाँ तो - ऐसा कहा है कि दिखलाऊँगा। वाणी द्वारा बतलायेंगे, वाणी के माध्यम से बतलायें, दूसरा तो अन्य उपाय नहीं। परंतु यह वाणी निज वैभव को

अनुकरण करके... वाणी तो निमित्त है, आयेगा। आहाहाहा ! समझ में आया... ऐसी बात है।

स्वीकार करना, यदि `कहीं भूल हो जाये' अनुभव में भूल हो जाये - ऐसा नहीं परंतु भाषा में, कहीं संस्कृत व्याकरण विभक्ति में, कहीं वाणी में अंतर आ सकता, वस्तु में फर्क नहीं हो सकता। आहाहाहा ! वस्तु में तो जैसा है वैसा ही आयेगा। आहा ! यदि वाणी में कोई विभक्ति, काल, भूतकाल के स्थान पर वर्तमान कहने में आये न - ऐसा कोई शब्द तुम्हें समझ में आये, तुम्हें इस प्रकार का ज्ञान हो, जिससे तुम्हें समझ में आये कि इस की जगह (यह लिख सकते) परंतु तुम वहाँ नहीं अटकना। इस वाणी में कुछ फर्क है और तुम्हें समझ में आये तब भी तुम वहाँ नहीं उलझना। आहाहाहा !

हम तो अंदर में चैतन्यभगवान... अनंतगुणोंरूपी हीरा प्रभु, उसमें जाने के लिये हम दिखलायेंगे तब तुम वहाँ जाना प्रभु ! आहाहाहा ! ***पंचमकाल के मुनि और पंचमकाल के श्रोता को यह बात कहते हैं। आहाहा ! अभी सर्वज्ञ का विरह होनेपर भी इतनी दृढ़ता से यह बात करते हैं कि हमारे श्रोता ऐसे होते हैं। आहाहा ! आहाहा ! जिसप्रकार निज-वैभव से वाणी आयेगी उसीप्रकार तुम भी निज-वैभव का अनुभव (करना)... आहाहाहा ! तुम्हारा वैभव तो अंदर में है। हमारा वैभव तो पर्याय में प्रगट होने से उससे कहते हैं।*** परंतु तुम्हारा जो वैभव अंदर पूर्ण है, पूर्ण संपत्ति अतीन्द्रिय आनंद आनंद आनंद आनंद... अतीन्द्रिय आनंद का पिण्ड बर्फ की तरह जमा हुआ है न वहाँ। आहाहा ! जिसमें (ध्रुव) में शुभ विकल्पों को भी प्रवेश करने का अवकाश नहीं। ***अरे ! उसके अनुभव की पर्याय हो उसका भी ध्रुव घन में प्रवेश पाने का अवकाश नहीं। आहाहा !***

यह तो सिद्धांत है भाई, वीतराग की वाणी ! इस वीतराग वाणी का पार नहीं प्रभु ! उसकी गंभीरता, उसकी गहराई, आहाहा ! साधारण व्यक्ति तो पार नहीं पा सके - ऐसा एक-एक गाथा का - ऐसा भाव है।

ओहोहोहो ! एक गाथा निहाल कर दे, आहाहा ! प्रभु सब अवसर आ गया है, आहाहा ! ***मोक्षमार्ग प्रकाशक में - ऐसा कहा है, कि `सब अवसर आ गया' यहाँ पर तो सब अवसर आ गया - ऐसा भी नहीं, तुम ऐसे ही हो...*** आहाहाहा ! प्रभु तुम सब भूल जाओ एवं तुम (निज) भगवान को भूल गये हो उसे अब याद करो। आहाहा ! तुमने भूलने जैसी वस्तु को बहुत याद किया है प्रभु ! आहाहा ! भूलने जैसी वस्तु को बहुत याद किया है, बहुत याद किया है बापा, तथा नहीं भुलाने जैसा भगवान है, उसे भुला कर पूरा भूल गया है। उसे किसी दिन तुमने याद ही नहीं किया, अब यह समय आया है, तुमसे कह रहे, प्रभु तुमसे। तुम्हें वाणी द्वारा

इशारा करके, आहा ! वह तुम्हारा नाथ अंदर... हमारी ओर की भक्ति का विकल्प जो राग है, सुनने का जो तुम्हारा विकल्प है, आहाहा ! उससे भिन्न प्रभु अंदर है। आहाहा ! - ऐसा उपदेश है कि जिस उपदेश को पाकर अनुभव से प्रमाण ही करे - ऐसा उपदेश है। आहाहा !

वर्तमान में केवलज्ञान पर्याय के धारक भगवान नहीं हैं, उन्हें अभी याद न करो, आहाहा ! तुम्हारे भगवान में तो अनंत केवलज्ञान की पर्याय भरी हैं। आहाहा ! भगवान का विरह है उसे भी भूल जाओ। आहाहा ! वर्तमान में केवलज्ञान की पर्याय का विरह है, यह भी भूल जाओ। पूर्ण भगवान अंदर है। आहाहा ! एवं हमें वही दर्शाना है, आहाहाहा ! उसी का अनुभव करना । बाकी शास्त्रों के कथन में एवं वाणी में तो अनेक अपेक्षायें होती हैं, उसमें कहीं संस्कृत धातु व्याकरण आदि में कुछ फर्क लगे तो उसका कुछ हमें आग्रह नहीं, यहाँ तो अंदर का अनुभव करना तथा कराना - इसी बात पर वजन है।

चूक जाऊँ तो क्या ? अनुभव में चूक जाऊँ - ऐसा नहीं, वस्तु व्यवस्था में चूक जाऊँ तो ध्यान रखना - ऐसा नहीं। आहाहा ! वस्तु तो जिसप्रकार है उसीप्रकार कही जायेगी। उसमें कहीं कम, ज्यादा, विपरीत है ही नहीं। आहाहा ! परंतु वाणी में कुछ फर्क हो सकता है, वाणी पर वस्तु है। आहाहा ! इसमें कुछ शब्दों की शैली में, कथन पद्धति में, व्याकरणादि के नियमों में फर्क हो सकता है, वस्तु में अंतर नहीं हो सकता। वाणी भी वस्तु को बतायेगी उसमें फर्क नहीं, आहाहा ! कहते हैं कि वाणी ही ऐसी निकलती है। परंतु उसमें व्याकरण के नियम बहुत होते हैं उन नियमों में कहीं अंतर आ जाये और तुम उसके जानकार हो वहाँ तुम्हें कुछ समझ में आये कि यहाँ (कुछ फर्क है) तब वहाँ अटकना नहीं, वहाँ ध्यान देना नहीं। हम जो कहना चाहते हैं वहाँ जा न प्रभु ! आहाहा गजब गाथायें है। प्रथम बारह गाथाओं में पीठिका (भूमिका) है न ? यह चबूतरा, विशाल चबूतरा फिर फलता फूलता वृक्ष ! मूल सामान्य बात तो पूरी की पूरी संपूर्ण इन बारह गाथाओं में अखण्डरूप से आ जाती है। आहाहा !

अब टीका :- आचार्यदेव कहते हैं, आचार्य भगवान बतलाते हैं... देखो ! एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि आत्मा वाणी बोल सकती नहीं, परंतु - ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध द्वारा, आचार्य कहते हैं - ऐसा कहा जाता है न ? आहाहा ! आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरा - जो कुछ अर्थात जितना है उतना... पूर्ण है - ऐसा कुछ मैं कहता नहीं। पूर्ण वैभव तो परमात्मा के पास है। आहाहा ! जो कुछ। आहाहा ! `इह किल' है न हमारा आत्मा का निज वैभव है हमारी आत्मा का निज वैभव पर्याय

में है। आहाहा ! शुद्धचैतन्यपरमात्मा उसकी सम्यक्श्रद्धा, उसका (सम्यक्)ज्ञान उसीकी लीनता एवं उसके आनंद के स्वादरूप दशा का जो हमारा वैभव है... आहाहा ! देखो यह आत्मा का वैभव ! राग एवं दयादान का विकल्प वह आत्मा का वैभव नहीं, तब फिर यह पैसा (धूल) पांच-पच्चीस लाख, बाहर से आकर बड़ा घर, मकान बनाते हैं न, आहाहा ! यह हमारा वैभव, यह हमारा फरनीचर एवं हमारा वैभव देखो ! दरवाजे के सामने दोनों तरफ हाथी बनाते है न ? यह मंदिर के बाहर नहीं बनाते ? वहाँ पालीताना में बनायें है न बड़े-बड़े हाथी, आहाहा ! यह भगवान का वैभव। (लोग - ऐसा मानते हैं)

यहाँ पर तो प्रभु भगवान (निजात्मा) का वैभव तो जो कुछ मुझे प्रगट हुआ है उसी से मैं कहूँगा। पूरा तो परमात्मा को प्रगट हुआ है। वह हमारी श्रद्धा में है। उनकी वाणी में जो आया है वह भी हमारी प्रतीति में है, परंतु यह व्यवहाररूप श्रद्धान है। आहाहा ! ***जो कुछ हमारे आत्मा का निजवैभव है, वह पर्याय की बात है समझे, यह द्रव्य-गुण की बात नहीं, प्रगट हुए वैभवरूप दशा की बात है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव वह जीव की पर्याय का निजवैभव है। आहाहाहाहा !***

वह वैभव है, हमारी आत्मा का निजवैभव है। प्रभु के आत्मा का जो वैभव है उससे अभी कुछ मतलब नहीं। आहाहा ! वह हमारी व्यवहार श्रद्धा में है, परंतु यह हमारा स्वामी अंदर प्रभु ! (निजात्मा) आहाहा ! चैतन्यरत्नाकर से भरा... इसका जो पर्याय का वैभव है, संपत्ति, हमारी संपत्ति यह है। आहाहा ! हमारी लक्ष्मी यह है। उस पूर्ण स्वरूप की निर्विकल्प श्रद्धा पूर्णस्वरूप का ज्ञान एवं पूर्णस्वरूप में रमणता इत्यादि। अनंत गुणों की वर्तमान में व्यक्त अवस्था हमारा निज वैभव है। आहाहा ! यह बात तो गंभीर है बापू ! समयसार वह क्या है !! आहाहा ! गजब काम किया है, एक-एक शब्द में छुपा हुआ इसका वाच्य कितना जोरदार है। आहाहा !

वह वैभव है जो है न ? `तम्' है न पहले ? उस एकत्व विभक्त आत्मा को आहाहा ! वह सर्वथा वह सभी से, वह सभी से। आहाहा ! हमारा निज वैभव जितना प्रगट हुआ है न ! उस सभी से, आहाहा ! दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनंदादि जितना वैभव है उस सभी से मैं कहूँगा। आहाहा ! कैसे शब्द, अमृतझर रहा है। आहाहा ! जगत का भाग्य है जो यह समयसार सुरक्षित रह गया। यह भेट दी है। तुम स्वयं से मिलो तब तुम्हें यह भेट हम तुम्हें देते है। अंतिमशब्द है, जयसेनाचार्य के (उनकी टीका में) आहाहा !

उस वैभव से, उस संपूर्ण से... आहाहा ! जितना मुझे ज्ञान प्रगट हुआ, समकित

प्रगट हुआ, आनंद आया, वीतरागतारूप चारित्र की शांति उन सभी से, आहाहा ! उसका अर्थ यह कि वाणी में कहीं भी कमी और अधूरापना नहीं आये। अपने पूरे वैभव से मैं कहूँगा। आहाहा ! परंतु प्रभु ! वैभव से कहोगे, उसमें तो विकल्प होता है, जिसप्रकार है उसी प्रकार बताना है, वह है तो विकल्प परंतु हमारा लक्ष्य विकल्प पर नहीं, सर्वथा विकल्प से ही कहेंगे - ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा ! हमारा जो वैभव आनंद, ज्ञान और जो यह शांति, अनंत गुणों व्यक्त दशा जितनी प्रगटी है, उस सभी से मैं कहूँगा। आहाहा ! मैं उन सभी से... आहाहा ! `**यह**' एकत्व विभक्त `**यह**' **प्रत्यक्ष आत्मा** एकत्व अपने स्वरूप में एकत्व है और राग से पृथक् अर्थात भिन्न है, अस्ति-नास्ति से कहा। आहाहा !

हमारा अस्तित्व परिपूर्ण एकत्व है, और जिसमें पर का संपूर्ण अभाव अर्थात भिन्न है। आहाहा ! `- ऐसा जो एकत्व विभक्त आत्मा' आहाहा ! उस एकत्व विभक्त आत्मा को (बतायेंगे), छ द्रव्यों को बताऊँगा और भगवान (अर्हन्त) ऐसे हैं, वह तुम्हें दिखाऊँगा- ऐसा कुछ नहीं कहा। आहाहा ! प्रयोजनभूत मूल चीज है वह मैं बतलाऊंगा। आहाहा ! और उसमें सभी आ जायेगा। `एकत्व विभक्त आत्मा को दिखलायेंगे' बस, छह द्रव्य और उनके अनंतगुण और उनकी पर्याय एव दूसरे सिद्ध तथा अरहंत उनकी यहाँ बात नहीं। मैं तो अपने निजवैभव से सर्वथा आत्मा को दिखालायेंगे। आहाहा !

यह..... यह..... अस्तित्व बतलाते हैं, कैसा ? एकत्व-विभक्त - ऐसा जो आत्मा उसे दिखालायेंगे, आत्मा को दिखलायेंगे, अरहंत कैसे हैं तथा गुरु कैसें है, वह नहीं। आहाहा ! शास्त्र का लक्षण क्या है एवं यह सभी... आहाहा ! एकत्व-विभक्त यह..... उसे मैं दिखलाऊंगा। `हमने पुरुषार्थपूर्वक व्यापार करके यह निर्णय किया है' आहाहा ! - ऐसा निर्णय किया है। आहा ! इस आत्मा के एकत्व-विभक्त को अपने वैभव से दिखायेंगे - ऐसा हमने निर्णय लिया है। अब दिखलाना प्रारंभ करें तब ध्यान रखना। आहाहा ! यह तो टीका में सहज वाणी निकली है कुन्दकुन्दआचार्य की गाथाओं में तो गंभीरता है, और अमृतचन्द्राचार्य ने उनके हृदय को खोल कर बात की है। आहाहा !

हमने - ऐसा व्यवसाय, उद्यम निर्णय किया है। आहाहा ! अपने ज्ञान में हमने निर्णय - ऐसा किया है कि मैं अपने निज ज्ञान वैभव से यह आत्मा जो एकत्व-विभक्त है उसे दिखाने का व्यापार करने का ही निश्चय किया है। ऐसे व्यवसाय का निश्चय किया है। आहाहा !

अब निज वैभव कैसा है, यह बतलाते हैं। निज वैभव से कहेंगे, परंतु वह पर्याय का निज वैभव कैसा है ? आहाहा ! `कैसा है हमारे आत्मा का निज वैभव' `कैसा

है हमारे आत्मा का निज वैभव' ? आहाहा !

`**इस लोक में**'... लोक (संसार) को सिद्ध किया। `लोकंति इति लोक' जिसमें छह द्रव्य रहें - ऐसा यह लोक है `उसमें प्रगट, समस्त पदार्थों को जाननेवाला' आहाहा ! वाणी, भगवान की वाणी इस लोक में समस्त वस्तुओं का, प्रगट सभी पदार्थों का, जितने पदार्थ हैं उन सभी को बतानेवाली है, आहाहा ! एवं `स्यात्' पद के चिन्हवाला - अपेक्षित कहना हो ऐसे चिन्हवाला, `कथंचित' कथन की अपेक्षा है, नित्य-अनित्य वगैरह शुद्ध-अशुद्ध ऐसे स्यात् पद के चिन्हवाला कथंचित की पहचानवाला जो शब्दब्रह्म है। आहाहाहा ! - ऐसा जो शब्दब्रह्म, भगवान की वाणी शब्दब्रह्म, आहाहा ! अरहंत का परमागम जो शब्दब्रह्म अर्थात क्या ? कि अरहंत का परमागम, भगवान के द्वारा कहा हुआ परमागम। आहाहाहा ! अरहंत (भगवान) के श्रीमुख से ओम ध्वनि निकली एवं जो परमागमों की रचना हुयी... आहाहा ! `- ऐसा जो शब्दब्रह्म अरहंत का परमागम, जिसकी आराधना से जिसकी उत्पत्ति हुयी।' आहाहाहा !

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा... आहाहा ! अरहंत का परमागम, उनका जो परमागम, शब्दब्रह्म, जो कि सर्वज्ञ से कहा हुआ, अरहंत परमात्मा के द्वारा कहा हुआ साक्षात शब्दब्रह्म। आहाहाहाहा ! - ऐसा होने से किसी ने कुछ शास्त्र भगवान के नाम पर रच दिये हैं, उनके अध्ययन से आत्मा प्रगट नहीं होगा। आहाहा ! - ऐसा कहते हैं कि वह निमित्त भी नहीं होगा। आहाहा ! तीनलोक के नाथ अरहंत परमात्मा की वाणी जो शब्दब्रह्म... आहाहा ! उसकी उपासना। उस परमागम को हमने सेवा की अर्थात उसमें जो कहा वह हमने जाना। परमागम में कहा वह हमने जाना। आहाहा ! - ऐसा कहने का आशय सर्वज्ञ की वाणी के अतिरिक्त अन्य कल्पना से रचे हुये शास्त्रों का निषेध कर दिया है। आहाहा ! कुछ समझ में आया ?

हमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप जो वैभव (प्रगटा है वह) वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की दिव्यध्वनिरूप परमागम, उसके लक्ष्य से अर्थात उसकी सेवा से... उन्होंने कहा वह हमने माना (और) जाना। आहाहा ! ऐसी वाणी अरहंत के मुख से निकली। इसके अतिरिक्त अन्य वाणी समकित में निमित्त भी हो नहीं सकती। समझ में आया ? इसमें बहुत भरा है। आहाहा ! अब इससे होगा, एवं इससे होगा, तथा इससे होगा, निमित्त ही जहाँ गलत है... आहाहा ! प्रथम तो अरहंत सर्वज्ञ को पहचानना और उनकी वाणी कैसी होती है, उसको पहचानना। आहाहाहा ! ***तथा उस वाणी की सेवा से, उन्होंने जो कहा उसकी उपासना से... आहाहा ! यह निमित्त से कथन है। यह आशय है कि निमित्त - ऐसा हो, निमित्त से होता नहीं... आहाहा ! परंतु होगा निमित्त - ऐसा, अन्य निमित्त हो तथा अंदर का निज वैभव प्रगटे- ऐसा नहीं***

होता। आहाहाहा ! गंभीर वाणी, अकेला अमृत परोसा है, अमृतचन्द्र आचार्य ने अमृत का समुद्र बहाया है। आहाहा !

उसकी उसापना से हमारी उत्पत्ति है `जन्म है' यह तो पर्याय की बात है न ! हमारी पर्याय की उत्पत्ति अरहंत के शब्दब्रह्म की सेवा से हुई है। निमित्त यह ही है। आहाहा ! अज्ञानी के वचनों को सर्वज्ञ के नाम से लिख दिया... सम्यक् निज वैभव (की उत्पत्ति में) वह निमित्त होते नहीं। समझ में आया ? जगत के लिए कठिन काम है। इसका नाम अरहंत का परमागम... (परमाम मंदिर की तरफ इसारा करते हुये) यह भी परमागम है न ? इस् मकान (मंदिर) का नाम परमागम है, अरहंत की वाणीमें से आयी हुयी यह सभी बातें हैं। आहाहा ! वैसे कहा है कि वाणी की सेवा से वैभव प्रगटा... देखो आया कि नहीं इसमें बापू ! यह निमित्त का कथन है। निमित्त कैसा हो... आहाहा ! सर्वज्ञ अरहंत त्रिलोकनाथ की ओम ध्वनि से रचित आगम, उसका कारण कि उस समय वह भगवान तो थे नहीं, वह तो वाद में गये थे परंतु अरहंत का जो परमागम, उनके द्वारा कहा हुआ प्रवर्तता था, हमारे अंतर के अनुभव में यह वाणी निमित्त हुयी। दूसरा कोई निमित्त हो सके नहीं - ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा !

यहाँ तो यह कहते हैं कि अरहंत की वाणी के अतिरिक्त (जो) कल्पित शास्त्र बनाये एवं नाम दिया हो अरहंत का, वह निज वैभव में निमित्त नहीं होता।

वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। वहाँ अन्य क्या ? आहाहा ! चाहे पंचमकाल हो, एवं अभी तो ढाई हजार वर्ष ही बीते हैं, अभी तो बहुत ज्यादा समय शेष है, यह तो पंचमकाल की शुरूआत है, आहाहा ! फिर भी भाव तो जो है अंत तक वैसा ही रहेगा, पंचम काल के अंत तक जो सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करेंगे, उन्हें यह वीतराग की वाणी निमित्त होगी। इस सर्वज्ञवीतराग के अतिरिक्त अन्य वाणी... उसके निमित्त से उसे समकित नहीं होगा। आहाहा ! कठिन बात है बापू ! आहाहा

श्रीमद रायचन्द्रग्रंथ के अंत में रत्नकरण्डश्रावकाचार ग्रंथमें से एक लेख है, अरहंतदेव कैसे हों ? अष्टादश दोषरहित, आठारह दोष रहित... इस प्रकार स्पष्ट उल्लेख है। अंतिम पाठ है न ! भूख प्यास रहित हो, क्षुधा तृषा रहित हो वह देव `यहाँ तो (श्वेतम्बरों में) अरहंत को भूख लगती हैं, एवं आहार लेते हैं, एवं रोग होता हैं, एवं दवाई लेते हैं।' (इसप्रकार गलत प्ररूपणा चलती हैं)

वहाँ तो उनकी (अर्थात) त्रिलोकीनाथ की उपासना की मुख्यता है, बनारसीदास जी ने लिखा है न ! नमो केवल नमो केवलरूप भगवान, `ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा ! - ऐसा

मार्ग है बापू ! यहँ तो सत्य है उसीका उद्घाटन करते हैं। उसकी प्रसिद्धि करते हैं। किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, किसी जीव के लिये नहीं, अरे ! वह भी भगवान है, वह भी सुखी होना चाहता है, परंतु..... आहाहा ! भूल के कारण पर्याय अपेक्षा दुःखी है। भगवान कहते है वह भी पूर्णानंदमय है। आहाहा। चाहे जितना विपरीत कथन करनेवाला हो। श्रद्धावाला हो, परंतु उसकी आत्मा प्रति का प्रेम नष्ट नहीं होता, विरोध नहीं होता। आहाहा ! किसका विरोध करें ? वस्तु का विरोध नहीं, पर्याय में फर्क हो उसका स्पष्टीकरण ३६३ पाखण्डों का बारह अंगों में वर्णन करते हैं ३६३ भेदों का वर्णन। बहुधा मतावलम्बियों को खेद होता कि यह खण्डन करते हैं। वस्तु का स्वरूप - ऐसा है।

`स्यात्' अर्थात क्या ? - ऐसा कहते हैं कि स्यात् अर्थात कथंचित किसी अपेक्षा से कहना, आत्मा को किसी अपेक्षा से नित्य कहंना, किसी अपेक्षा से अनित्य कहना, स्थाई रहने की अपेक्षा नित्य है, पलटने की अपेक्षा अनित्य है - ऐसा `स्यात्' (अर्थात) अपेक्षा से कहा जाता। उसमें इस प्रकार के धर्म होते हैं (अपेक्षा से)

`परमागम को शब्दब्रह्म कहा' परमागम को व्यापक शब्दब्रह्म कहा। उसका कारण अरहंत के परमागम में सामान्य धर्म वचनगोचर हैं। कितने ही सामान्य धर्म (गुण) वचनों से कहे जा सकते हैं। कितने ही सामान्य धर्मों को वचनों से कहा जाता है। सभी धर्मों का नाम आता है। एवं वचन अगोचर जितने विशेष धर्म है, उनका अनुमान किया जाता है, अनुमान करने में आता है अर्थात कहे जाते, जैसे कि भाई एक द्रव्य का दूसरा द्रव्य नहीं तब ऐसे अनंत द्रव्य हैं, उसे चाहे न दिखे। इस प्रकार अनुमान किया जाता है। इसप्रकार वह सभी वस्तुओं का प्रकाशक है। वीतराग की वाणी सर्व वस्तुओं को बतलानेवाली है। आहाहा ! अतः सर्वव्यापी कहलाती है। उस वाणी को सर्व व्यापी कहा जाता है। संपूर्ण दर्शानेवाली है। सर्वव्यापी अर्थात पूरी कहनेवाली है आहाहा ! श्रीमद जी कहते हैं न, जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं फिर भी श्रीभगवान जी, वह तो अपेक्षित बात है परंतु यहाँ तो सर्वव्यापी पूर्ण कह सकते हैं - ऐसा कहा जाता है। समझे न ! सर्वव्यापी शब्द कहा है न ? शब्दब्रह्म अर्थात व्यापक सभी (पूर्ण) को कहनेवाली है इसलिये उसे शब्दब्रह्म कहा जाता है, देखो यह तो शब्दब्रह्म की परिभाषा बतलाई।

विशेष कहेंगे - प्रमाण वचन गुरुदेव !